

ओं हीं उत्तमक्षमा आदि दशलक्षण धर्म को मोक्ष फल की प्राप्ति के लिए फल समर्पित करता हूँ।

आठों दरब संवार, 'द्यानत' अधिक उछाहसों।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा ॥9॥

ओं हीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षणधर्माय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भावार्थ—जल चन्दन आदि आठों द्रव्यों को सजाकर अत्यन्त उत्साह पूर्वक भव की ताप को नष्ट करने के लिए दशलक्षण धर्म की पूजा करता हूँ। ऐसा श्री द्यानतरायजी कहते हैं।

ओं हीं उत्तमक्षमा आदि दशलक्षण को अनर्घ्य पद की प्राप्ति करने के लिए अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

अंगपूजा

(उत्तमाक्षमा)

सोरठा

पीड़ें दुष्ट अनेक, बाँध मार बहुविधि करें।

धरिये छिमा विवेक, कोप न कीजै पीतमा ॥

भावार्थ—बहुत दुर्जन लोग दुःख देवें, बांधकर अनेक प्रकार से मारपीट करे। यातनायें दे वहाँ हे पवित्र आत्मा क्रोध को न करके विवेक पूर्वक उत्तम क्षमा को धारण कीजिए।

उत्तम छिमा गहो रे भाई, इह भव जस, पर भव सुखदाई।

गाली सुनि मन खेद न आनो, गुनको औगुन कहै अयानो ॥

कहि है अयानो वस्तु छीनै, बाँध मार बहुविधि करें।

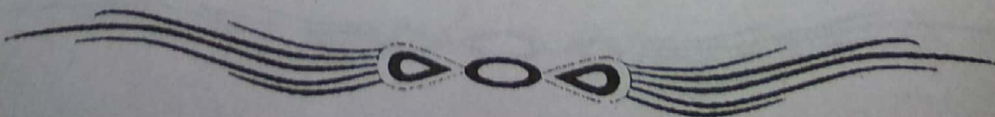
घरतैं निकारैं तन विदारैं, बैर जो न तहाँ धरैं ॥

तैं करम पूरब किये खोटे, सहै क्यों नहिं जीयरा।

अति क्रोध-अगनि बुझाय प्राणी, साम्य जल ले सीयरा ॥

ओं हीं उत्तम-क्षमा-धर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥1॥

* अयानो = अज्ञानी



भावार्थ—हे भाई उत्तमक्षमा को ग्रहण करो, यह क्षमा इस भव में यश और अगले भव में सुख को देने वाली है, कोई अज्ञानी गुणों को अवगुण रूप भी कहता है गालियाँ (अपशब्द) भी देता है तो भी मन में खेद (दुःख) नहीं करना चाहिए। ऐसा वह अज्ञानी अपशब्द कहता हुआ हमारी कोई वस्तु छीन लेवे, बांध देवे अनेक प्रकार से मारे घर से निकाल देवे शरीर का छेदन करे (विदारण करे) तब भी वहां उससे बैर भाव धारण नहीं करना चाहिए। किन्तु चिन्तन करना चाहिए कि पूर्व भवों में मैंने जोपाप कर्मों का संचय किया या जो पाप कर्म किये हे जीव अब उन्हें क्यों नहीं सहन करोगे (भोगोगे)। अत्यन्त भीषण क्रोध रूपी अग्नि को हे जीव समता रूपी अत्यन्त शीतल जल से बुझाओ। अर्थात् क्रोध के समय समता धारण करो।

ओं हीं धर्म के अंग उत्तम क्षमा के लिए अनर्घ्य पद की प्राप्ति को अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

उत्तम मार्दव

मान महाविषरूप, करहि नीच गति-जगत में।

कोमल सुधा अनूप, सुख पावै प्राणी सदा ॥

भावार्थ—मान महा विष के समान है यह मान (नीच गति) + संसार में नरक गति को करने वाला है कोमलता (मृदुता) रूपी अनुपम अमृत को ग्रहण करने वाले जीव हमेशा सुख प्राप्त करते हैं।

उत्तम मार्दव-गुन मन माना, मान करन को कौन ठिकाना।

वस्यो निगोद माहितैं आया, दमरी रूकन भाग बिकाया ॥

रूकन बिकाया भाग-वशतैं, देव इकइंद्री भया।

उत्तम मुआ चांडाल हूवा, भूप कीड़ों में गया ॥

जीतव्य जोवन धन गुमान, कहा करै जल-बुदबुदा।

करि विनय बहु-गुन बड़े जनकी, ज्ञान का पावैं उदा ॥

+ संसार में नीच जाति के अर्थात् अज्ञानी जीव ही मान को करते हैं।

1. मान करने से नीच गौत्र का आस्वव करते हैं। और संसार में नीच जातियों में जन्म लेते हैं।

2. शुभ नामक मिथिला नगर का राजा रानी मनोरमा पुत्र देवरति था।

ओं हीं उत्तम मार्दव धर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥2॥

भावार्थ—उत्तम मार्दव गुण मन को अच्छा लगने वाला है, मान करने का क्या आधार है क्योंकि अनंत काल से निगोद में रहता था वहाँ से आकर स्थावर में वनस्थिति काय का जीव हुआ कभी दमरी (सबसे छोटी मुद्रा) के भाव बिक गया कभी रुकन अर्थात् बिना मूल्य के ही बिक गया भाग्य उदय से यह जीव देव हुआ और देव पर्याय से आकर एकेन्द्री हो गया, उत्तम पर्याय से चांडाल हुआ, राजा भी, कीड़ों में जाकर उत्पन्न हो गया¹ हे आत्मा, क्या जीवन युवावस्था और धन का घमंड करता है। ये सब जल के बुलबुले के समान क्षणभर में नष्ट होने वाले हैं। जिनमें बहुत गुण हैं अर्थात् गुणवान, हैं जिनकी बड़ी आयु है ऐसे माता-पिता आदि की विनय करना चाहिए जिससे ज्ञान की प्राप्ति होती है।

ओं हीं धर्म के अंग उत्तम मार्दव धर्म को अनर्घ्य पद की प्राप्ति करने के लिए अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

उत्तम आर्जव

कपट न कीजै कोय, चोरनके पुर* ना बसै।

सरल सुभावी होय, ताके घर बहु संपदा ॥

भावार्थ—छल कपट नहीं करना चाहिए धन सम्पत्ति चोरों के यहाँ नहीं होती वे हमेशा निर्धन ही होते हैं किन्तु जिनका स्वभाव सरल होता है उनके यहाँ बहुत धन सम्पदा होती।

उत्तम आर्जव-रीति बखानी, रंचक दगा बहुत दुखदानी।

मनमें हो सो वचन उचरिये, वचन होय सो तनसौं करिये ॥

करिये सरल तिहुँ जोग अपने, देख निरमल आरसी।

मुख करै जैसा लखै तैसा, कपट-प्रीति अंगारसी ॥

नहिं लहै लछमी अधिक, छल करि, कर्म-बंध-विशेषता।

भय त्यागि दूध बिलाव पीवै, आपदा नहिं देखता ॥

ओं हीं उत्तमार्जव धर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥3॥

*छल कपट नहीं करना चाहिए एवं चोरों के नगर में निवास नहीं करना चाहिए।

भावार्थ—उत्तम आर्जव सरल स्वभाव को कहते हैं रंचमात्र भी दगा दुख को देने वाला है, जो विचार मन में हो वही वचन में रहना और जो वचन से कहा जाय वही काय से किया जाना चाहिए। इस प्रकार से तीनों योगों को सरल करना चाहिए जैसे निर्मल स्वच्छ दर्पण में जैसा अपना मुँह करोगे वैसा ही दिखेगा। छल कपट की प्रीति अंगारों से प्रीति करने के समान है (जैसे अंगारों में ऊपर राख दिखती है और अन्दर अग्नि दहकती रहती है। अधिक छल करके कोई भी धन सम्पदा प्राप्त नहीं कर सकता बल्कि अधिक कर्म बंध करता है उस कर्मबंध का ध्यान नहीं करता और छल करता रहता है जैसे-बिल्ली आंख बंद करके दूध पीते समय भय का त्याग करती है और पीछे मार पड़ेगी ध्यान नहीं रखती उसी प्रकार छल करने वाला कर्मबंध का ध्यान नहीं करते हुए छल करता रहता है।

ओं हीं धर्म के अंग उत्तम आर्जव धर्म के लिए अनर्घ्य पद की प्राप्ति करने के लिए अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

उत्तम शौच

धरि हिरदै संतोष, करहु तपस्या देहसों।

शौच सदा निरदोष, धरम बड़ो संसार में॥

भावार्थ—हृदय में संतोष धारण कर शरीर से तपस्या करना चाहिए दोष रहित शौच धर्म ही संसार में सबसे बड़ा धर्म है।

उत्तम शौच सर्व जग जाना, लोभ पाप को बाप बखाना।

आशा-पास महा दुखदानी, सुख पावैं संतोषी प्रानी॥

प्रानी सदा शुचि शील जप, तप, ज्ञान ध्यान प्रभावतैं।

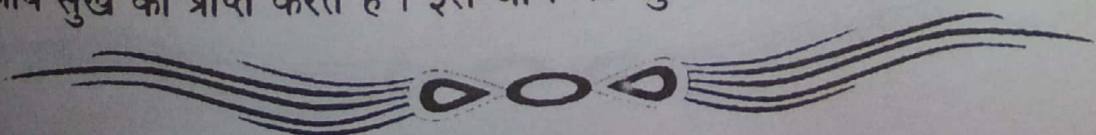
नित गंग जमुन समुद्र नहाये, अशुचि-दोष सुभावतैं।

ऊपर अमल मल भर्यो भीतर, कौन विधि घट शुचि कहै।

बहु देह मैली सुगुन-थैली, शौच-गुन साधू लहै॥

ओं हीं उत्तम शौच धर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥४॥

भावार्थ—उत्तम शौच धर्म सर्व जगत में विख्यात है यह लोभ कषाय के अभाव में होता है। लोभ सर्व पापों को (उत्पन्न) करने वाला है। आशा-इच्छा रूपी पाश भयानक दुःखों को देने वाली है अतः संतोष को धारण करने वाले जीव सुख को प्राप्त करते हैं। इस जीव की शुचिता (पवित्रता) शील, जप, तप,



ज्ञान, ध्यान के प्रभाव से होती है हमेशा गंगा, यमुना आदि नदियों में एवं समुद्र में भी स्नान करने से शुचित्ता अर्थात् पवित्रता नहीं होती क्योंकि इस शरीर का स्वभाव ही अपवित्र है। यह ऊपर तो अत्यन्त निर्मल दिखता है परन्तु इसके अन्दर मल भरा हुआ है ऐसे शरीर को किस प्रकार पवित्र कहा जा सकता है। जिनका शरीर तो मलिन है पर जो गुणों के भंडार हैं ऐसे महाव्रती साधु ही इस शौच गुण को प्राप्त करते हैं।

ओं हीं धर्म के अंग उत्तम शौच धर्म के लिए अनर्घ्य पद की प्राप्ति को अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

उत्तम सत्य

कठिन वचन मत बोल, पर निंदा अरु झूठ तज।

सांच जवाहर खोल, सतवादी जग में सुखी॥

भावार्थ—कठोर वचन, पर निंदा, और झूठ वचनों का त्याग करना सत्यधर्म है सत्य रूपी जवाहर रत्न का उपयोग करना चाहिए क्योंकि सत्यवादी प्राणी संसार में सुखी रहते हैं।

उत्तम सत्य-वरत पालीजे, पर-विश्वासघात नहिं कीजे।

सांचे झूठे मानुष देखो,* आपन पूत स्वपास न पेखो॥

पेखो तिहायत पुरुष सांचे को दरब सब दीजिए।

मुनिराज-श्रावक की प्रतिष्ठा सांच गुण लख लीजिये॥

ऊंचे सिंहासन बैठि वसु नृप, धरम का भूपति भया।

बच झूठ सेती नरक पहुँचा, सुरग में नारद गया॥

ओं हीं उत्तम सत्यधर्माङ्गीय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥5॥

भावार्थ—उत्तम सत्य धर्म पालन करना चाहिए दूसरों का विश्वासघात नहीं करना चाहिए। सत्यवादी और झूठे मनुष्यों को देखो झूठ बोलने वाले अपने पुत्र पर भी विश्वास नहीं करते अर्थात् झूठे व्यक्तियों पर कोई विश्वास नहीं करता निस्वार्थ सत्यवादी का सभी विश्वास करते हैं और अमानत स्वरूप धन भी देते

+ हमने अभी तक सच्चे और झूठे मनुष्य ही देखे हैं लेकिन अपने आत्मा के पवित्र स्वभाव के पास जाकर नहीं देखा यह निश्चय सत्य धर्म का लक्षण है।

सांचे झूठे मनुष्यों को तो देखता है किन्तु अपने अन्तर में स्थित शुद्ध आत्म स्वरूप को नहीं देखता जो आत्मा का सत् स्वरूप है।

हैं। मुनिराजों की और श्रावकों की प्रतिष्ठा (इज्जत) सत्य गुण से सत्यधर्म से ही है। राजा बसु ऊँचे सिंहासन पर बैठकर न्यायकरता था झूठ बोलने के कारण से नरक में गया और सत्य को बोलने वाला नारद स्वर्ग गया।
 ओं हीं धर्म के अंग उत्तम सत्य धर्म के लिए अनर्घ्य पद की प्राप्ति को अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

उत्तम संयम

काय छहों प्रतिपाल, पंचेन्द्री मन वश करो।

संयम-रतन संभाल, विषय चोर बहु फिरत हैं॥

भावार्थ—छह काय के जीवों की रक्षा करना और पांच इन्द्रियों और मन को वश में करना उत्तम संयम धर्म है। संयम रूपी रत्न को संभाल कर रखना चाहिए क्योंकि विषय वासना रूपी बहुत चोर घूम रहे हैं।

उत्तम संजम गहु मन मेरे, भव-भवके भाजैं अघ तेरे।

सुरग-नरक-पशुगति में नाहीं, आलस-हरन-करन सुख ठाहीं॥

ठाहीं पृथ्वी जल आग मारुत, रूख त्रस करुना धरो।

सपरसन रसना घान नैना, कान मन सब वश करो॥

जिस बिना नहिं जिनराज सीझे, तू रूल्यो जग कीच में।

इक घरी मत विसरो करो नित, आव जम-मुख बीच में॥

ओं हीं उत्तम संयम धर्माङ्गिय अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा ॥६॥

भावार्थ—उत्तम संयम धर्म को हे मन धारण करो इसे धारण करने से अनेक भवों के पाप नष्ट हो जाते हैं। यह संयम स्वर्ग, नरक और पशु (तिर्यञ्च) गति में नहीं है। यह संयम आलस का हरण करने वाला और सुख को करने वाला है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, और वनस्पति ये स्थावर और त्रस इन छह काय के जीवों पर दयाभाव धारण कर स्पर्शन, रसना, घान, चक्षु, कान और मन को वश करना संयम धर्म है। इस संयम के बिना तीर्थंकर भी मोक्ष को प्राप्त नहीं हुए और जिसके नहीं धारण करने से ही यह आत्मा संसार रूपी कीचड़ में फंसा रहता है। हमें इस संयम को एक क्षण को भी नहीं भूलना चाहिए हम जम अर्थात् मृत्यु के मुँह में आ रहे हैं।

ओं हीं धर्म के अंग उत्तम संयम धर्म के लिए अनर्घ्य पद प्राप्त करने को अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

उत्तम तप

तप चाहे सुरराय, करम-शिखरकों वज्र है।

द्वादशविधि सुखदाय, क्यों न करै निज सकति सम ॥

भावार्थ—उत्तम तप को देवों के राजा इन्द्र भी चाहते हैं यह तप कर्म रूपी पर्वत को नष्ट करने के लिए वज्र के समान है यह सुख देने वाला तप बारह प्रकार का है इन तपों को अपनी शक्ति के अनुसार क्यों धारण नहीं करते हो।

उत्तम तप सब माहिं बखाना, करम-शैलको वज्र समाना।

वस्यो अनादि-निगोद-मँझारा, भू-विकलत्रय-पशु-तन धारा ॥

धारा मनुष तन महादुर्लभ, सुकुल आयु निरोगता।

श्रीजैनवानी तत्वज्ञानी, भई विषय-पयोगता ॥

अति महादुर्लभ त्याग विषय, कषाय जो तप आदरै।

नर-भव अनूपम कनक घरपर, मणिमयी कलसा धरै ॥

ओं ह्रीं उत्तम तपो धर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥१॥

① उत्तम तप धर्म का सब ग्रन्थों में वर्णन मिलता है कर्म रूपी पर्वत को नष्ट करने के लिए यह वज्र के समान है ② अनादिकाल से यह जीव निगोद में रह रहा है। वहाँ से निकलकर पृथ्वी आदि स्थावर हुआ स्थावर के बाद त्रस पर्याय में विकलेन्द्री हुआ और फिर पशुओं (तिर्यञ्च) के शरीर को धारण किया ③ अब दुर्लभ यह मनुष्य पर्याय प्राप्त की है उसमें भी उच्चकुल, पूर्णआयु, निरोग शरीर, ④ जिनवाणी का संयोग, तत्व ज्ञान, आत्म चिन्तन में उपयोग अत्यन्त दुर्लभता से प्राप्त किया है जो व्यक्ति अत्यन्त महा दुर्लभ विषय, और कषाय का त्याग कर तप को आदरपूर्वक ग्रहण करते हैं ⑤ वे मनुष्य भवरूपी स्वर्ण गृह पर रत्नमयी कलशा चढ़ाते हैं अर्थात् नर जन्म धन्य करते हैं।

ओं ह्रीं धर्म के अंग उत्तम तप धर्म के लिए अनर्घ्य पद की प्राप्ति को अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

उत्तम त्याग

दान चार परकार, चार संघ को दीजिए।

धन बिजुली उनहार, नर-भव त्यागो जीजिए ॥

भावार्थ—दान चार प्रकार के होते ये चारों दान चार संघ अर्थात् मुनि आर्यिका, श्रावक, श्राविका को देना चाहिए। धन सम्पत्ति वैभव बिजली की चमक की तरह है अतः मनुष्य भव का लाभ लेना चाहिए।

उत्तम त्याग कह्यो जग सारा, औषध शास्त्र अभय आहारा।
निहचै राग-द्वेष निरवारै, ज्ञाता दोनों दान संभारै॥
दोनों संभारे कूप-जलसम, दरब घर में परिनया।
निज हाथ दीजे साथ लीजे खाय खोया बह गया॥
धनि साध शास्त्र अभय-दिवैया, त्याग राग विरोध को।
बिन दान श्रावक साधु दोनों, लहै नाही बोध को॥
ओं ह्रीं उत्तम त्याग धर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥४॥

भावार्थ—उत्तम त्याग समस्त संसार में श्रेष्ठ है। ये दान औषधिदान, शास्त्रदान, अभयदान और आहारदान के भेद से चार प्रकार का है। यह तो व्यवहार त्याग है। निश्चय त्याग, राग द्वेष के त्याग को कहते हैं ज्ञानी जन दोनों दान (निश्चय, और व्यवहार) करते हैं। कुयें का पानी यदि खर्च न हो तो खराब हो जाता है। और यदि खर्च होता रहे तो खराब नहीं होता। उसी प्रकार घर में धन सम्पत्ति वैभव हो तो दान करना चाहिए जो श्रेष्ठ है नहीं तो नष्ट हो जायेगा लेकिन रहने वाला नहीं है। धन्य है वे साधु जो शास्त्र दान, अभय दान के देने वाले हैं और राग द्वेष का त्याग करने वाले हैं। बिना दान के श्रावक और साधु दोनों ही सम्यक् ज्ञान को प्राप्त नहीं होते।

ओं ह्रीं धर्म के अंग उत्तम त्याग धर्म के लिए अनर्घ्य पद की प्राप्ति को अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

उत्तम आकिञ्चन

परिग्रह चौबिस भेद त्याग करें मुनिराज जी।
तिसना भाव उछेद, घटती जान घटाइए॥*

*परिग्रह चौबीस भेद, यह व्यवहार आकिञ्चन धर्म है और तिसना भाव उछेद, यह निश्चय अकिञ्चन धर्म है। परिग्रह के २४ भेद (अंतरंग १४ और बाह्य १०)

अंतरंग - मिथ्यात्व, चार, कषाय तथा नौ कषाय = १४

बाह्य - खेत, मकान, रुपया, सोना, गोधन आदि, अनाज दासी, दास कपड़े तथा बर्तन व मसाले आदि = १०।

परिग्रह के चौबीस भेद हैं उनका त्याग (व्यवहार आकिञ्चन) मुनिराज करते हैं और तृष्णा भाव को नष्ट करते हैं (निश्चय आकिञ्चन) । श्रावकों को भी धीरे-धीरे दोनों प्रकार के परिग्रहों को घटाना चाहिए ।

उत्तम आकिञ्चन गुण जानो, परिग्रह-चिन्ता दुख ही मानो ।
फाँस तनकसी तन में सालै, चाह लंगोटी की दुख भालै ॥
भालै न समता सुख कभी नर, बिना मुनि-मुद्रा धरै ।
धनि नगन* पर तन-नगन ठाढ़े, सुर-असुर पायनि परै ॥
घरमाहिं तिसना जो घटावे, रुचि नहीं संसार सौं ।
बहु धन बुरा हू भला कहिये, लीन पर उपगारसौं ॥

ओं ह्रीं उत्तमाकिञ्चन्य धर्मागाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥१९॥

उत्तम आकिञ्चन श्रेष्ठ गुण है, परिग्रह चिन्ता दुःख के ही पर्याय है छोटी सी फाँस भी पूरे शरीर को दुःखी कर देती है उसी प्रकार लंगोटी का आवरण या लंगोटी की चाह दुःख को देने वाली होती है । यह मनुष्य, महाव्रत अर्थात् निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि की मुद्रा को धारण किये बिना समता और सुख को प्राप्त नहीं कर सकते । वे मुनिराज धन्य हैं जो पर्वतों पर नग्न खड़े रहकर तप करते हैं उनके चरणों की पूजा सुर असुर आदि सभी करते हैं । घर में रहते हुए भी जो तृष्णा को घटाते हैं, तथा जनको संसार में रुचि नहीं है । ऐसे जीवों का धन यद्यपि धन बुरा ही होता है, परोपकार में लगने के कारण फिर भी अच्छा कहा गया है ।

ओं ह्रीं धर्म के अंग उत्तम आकिञ्चन धर्म करने के लिए अनर्घ्य पद की प्राप्ति को अर्घ्य समर्पित करता हूँ ।

उत्तम ब्रह्मचर्य

शील-बाढ़ नौ राख, ब्रह्म-भाव अन्तर लखो ।
करि दोनों अभिलाख, करहु सफल नर-भव सदा ॥

* धन्य है वे मुनि राज जो अन्तर से नग्न हैं (अंतरंग परिग्रह से रहित) शरीर से भी नग्न (बाह्य परिग्रह से रहित) खड़े रहते हैं ।

शील की रक्षक नौ बाढ़ें-१. स्त्री राग वर्धक कथा न सुनना २. स्त्रियों के मनोहर अंगों को न देखना ३. पहले भोगे हुए भोगों को याद न करना ४. गरिष्ठ व स्वादिष्ट भोजन न करना ५. अपने शरीर को श्रृंगारित न करना । ६. स्त्रियों की शय्या या आसन पर न बैठना ७. स्त्रियों से घुल मिल कर बातें न करना ८. भर पेट भोजन न करना ९. कामोत्तेजक नृत्य, फिल्म, टी.वी न देखना ।

उत्तम ब्रह्मचर्य मन आनौ, माता बहिन सुता पहिचानौ ।
 सहै बान-वरषा बहु सूरै, टिकै न नैन-बान लखि कूरै ॥
 कूरै तियाके अशुचि तन में, काम-रोगी रति करै ।
 बहु मृतक सड़हि मसान माहीं, काग ज्यों चोंचें भरै ॥
 संसार में विष-बेल नारी, तजि गये जोगीश्वरा ।
 'द्यानत' धरम दस पैडि चढ़िकै, शिव महल में पग धरा ॥
 ओं ह्रीं उत्तम ब्रह्मचर्यधर्मागाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥10 ॥

भावार्थ—शील को नौ बाड़े लगाकर सुरक्षित रखना चाहिए (व्यवहार ब्रह्मचर्य) और अन्तर में ब्रह्म अर्थात् आत्म चिन्तन करना चाहिए (निश्चय ब्रह्मचर्य) शील की नौ बाड़ों की एवं आत्मचिन्तन इन दोनों की प्राप्ति के अभिलाषी बनके मनुष्य जन्म सफल करना चाहिए ।

① उत्तम ब्रह्मचर्य मन में धारण कर माता, बहिन और पुत्री की पहिचान करना चाहिए । ② यह जीव रणभूमि में सूरवीरों द्वारा की जाने वाली वाणों की वर्षा को सहन कर लेता है । परन्तु स्त्रियों के क्रूर नेत्र रूपी वाण को सहन नहीं कर पाता ③ ऐसा काम रोग से पीड़ित स्त्री के अपवित्र शरीर में रति (प्रेम) करता है जिस प्रकार श्मशान में मरे हुए सड़े हुए शरीर में कौआ प्रेम करके चौंचों से मृत शरीर को खाता है ④ संसार में स्त्री विष बेल + के समान है । इसलिए सभी मुनिराजों ने स्त्रियों का त्याग कर दिया ⑤ श्री द्यानत राय जी कहते हैं कि ये दस धर्म रूपी सीढ़ियां चढ़कर मोक्ष रूपी महल में प्रवेश हो जाता है ।

ओं ह्रीं धर्म के अंग उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म के लिए अनर्घ्य पद की प्राप्ति को अर्घ्य समर्पित करता हूँ ।

+ स्त्रियों को विष बेल कहने का कविका अभिप्राय स्त्रियों के प्रति कामेच्छा रहा है । जैसे बहिन अथवा माता के कारण राग भाव की उत्पत्ति नहीं होती है परन्तु स्त्री मात्र के कारण रागभाव की उत्पत्ति होती है । इससे स्त्रियों को विषबेल कहा गया है ।

1. यहाँ पर व्यवहार ब्रह्मचर्य का और निश्चय ब्रह्मचर्य का वर्णन किया है । शील की नौ बाड़े लगाकर सुरक्षित रखना व्यवहार ब्रह्मचर्य है । और आत्मा में लीन रहना निश्चय ब्रह्मचर्य है ।

समुच्चय जयमाला

दोहा

दस लच्छन बंदों सदा, मन वांछित फलदाय।
कहों आरती भारती, हम पर होहु सहाय॥

भावार्थ—दशलक्षण धर्म की सदा वंदना करता हूँ। इससे मन के अनुकूल फल की प्राप्ति होती है दशलक्षण धर्म की आगमानुकूल आरती कहता हूँ है भगवान मेरी सहायता कीजिए।

वेसरी छन्द

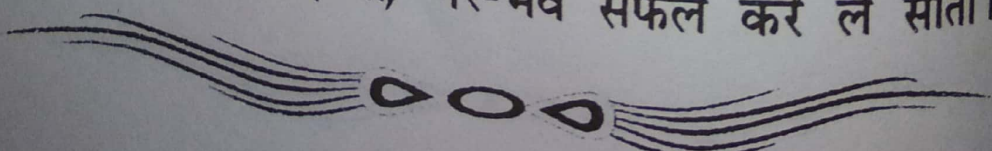
उत्तम छिमा जहाँ मन होइ, अंतर-बाहिर शत्रु न कोई।
उत्तम मार्दव विनय प्रकासै, नानाभेद ज्ञान सब भासै॥

भावार्थ—उत्तम क्षमा जिनके मन में होती है उनके मन में राग द्वेष आदि विकारभाव आत्मा के शत्रु और बाह्य में भी कोई शत्रु नहीं रहता। उत्तम मार्दव धर्म, विनयगुण का प्रकाशन करके अनेक प्रकार से ज्ञान के आठों भेदों का आभास करवाता है।

उत्तम आर्जव कपट मिटावे, दुरगति त्यागि सुगति उपजावे।
उत्तम सत्य-वचन मुख बोलै, सो प्रानी संसार न डोलै॥

भावार्थ—उत्तम आर्जव धर्म छलकपट को नाश करता है एवं खोटी गतियों से छुड़ाकर श्रेष्ठ गतियों में उत्पन्न करवाता है। जो उत्तम सत्य वचन मुख से बोलते हैं वे जीव संसार में परिभ्रमण नहीं करते।

उत्तम शौच लोभ-परिहारी, संतोषी गुण-रत्न भंडारी।
उत्तम संयम पालै ज्ञाता, नर-भव सफल करै ले साता॥



भावार्थ—उत्तम शौच धर्म लोभ कषाय का नाश करता है, जिनके संतोष है वे गुणों के भंडार होते हैं। उत्तम संयम धर्म को जो ज्ञानीजन धारण करते हैं वे साता को प्राप्त करके मनुष्य भव को सफल करते हैं।

**उत्तम तप निरवांछित पालै, सो नर करम-शत्रु को टालै।
उत्तम त्याग करे जो कोई, भोगभूमि-सुर शिवसुख होई ॥**

भावार्थ—इच्छा रहित उत्तम तप धर्म का पालन करने से मनुष्यों के कर्म रूपी शत्रुओं का नाश हो जाता है। जो व्यक्ति उत्तम त्याग करते हैं वे भोग भूमि और स्वर्ग के सुख भोग कर मोक्ष सुख प्राप्त करते हैं।

**उत्तम आकिंचन व्रत धारे, परम समाधि दशा विस्तारे।
उत्तम ब्रह्मचर्य मन लावै, नर-सुर सहित मुक्ति-फल पावै ॥**

भावार्थ—जो उत्तम आकिञ्चन धर्म को धारण करते हैं वे परम समाधि को प्राप्त होते हैं। उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म को जो मन में धारण करते हैं वे मनुष्य देव गति को प्राप्त कर मोक्षफल प्राप्त करते हैं।

दोहा

करै करमकी निरजरा, भव पींजरा विनाश।

अजर अमर पद को लहै, 'द्यानत' सुखकी राश ॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य, ब्रह्मचर्य दश-लक्षण-धर्माय पूर्णाध्यायं निर्वपामीति स्वाहा।

भावार्थ—यह दस लक्षण धर्म कर्म की निर्जरा कर भव रूपी पिंजरा को नष्ट कर अजर, अमर पद को प्राप्त कर सुख की राशि अर्थात् अनंत सुख की प्राप्ति कराते हैं ऐसा द्यानत राय जी कहते हैं।

ओं ह्रीं उत्तम क्षमा आदि दशलक्षण धर्म के लिए अनर्घ्य पद की प्राप्ति को अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

दशलक्षणधर्म-पूजा

(कविवर दानतराय जी)

अडिल्ल

उत्तम छिमा मारदव आरजव भाव हैं ।
सत्य शौच संयम तप त्याग उपाव हैं ।
आकिंचन ब्रह्मचरज धरम दश सार हैं,
चहुंगति-दुखतैं काढ़ि मुकति करतार हैं ॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षणधर्म ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् । आह्वानं ।
ओं ह्रीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षणधर्म ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः । स्थापनं ।
ओं ह्रीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षणधर्म ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।
सन्तिधिकरणं ।

भावार्थ—उत्तमक्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव ये जीव के भाव हैं, उत्तम सत्य, उत्तम शौच, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग ये मोक्ष प्राप्ति के उपाय हैं, उत्तम आकिंचन, उत्तम ब्रह्मचर्य ये दस धर्म में सार हैं अर्थात् उत्कृष्ट हैं ये दश धर्म चारों गतियों के दुःखों से निकालकर मोक्ष सुख को करने वाले हैं ।

ओं ह्रीं उत्तमक्षमा आदि दशलक्षण धर्म यहाँ आइये आइये ।

ओं ह्रीं उत्तमक्षमा आदि दशलक्षण धर्म-यहाँ ठहरिये ठहरिये ।

ओं ह्रीं उत्तमक्षमा आदि दशलक्षण धर्म यहाँ मेरे और समीप होइये होइये ।

सोरठा

हेमाचलकी धार, मुनि-चित सम शीतल सुरभि ।
भव-आताप निवार, दस लच्छन पूजौं सदा ॥1॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमा - मार्दवार्जव - सत्य- शौचसंयम- तपस्त्यागाकिञ्चन्य-
ब्रह्मचर्येति दशलक्षणधर्माय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

भावार्थ—हिमवन पर्वत से निकलने वाली धारा के जल, (गंगा नदी का जल) मुनिराजों के मन के समान निर्मल शीतल और सुगंधित जल से भव की

ताप को नष्ट करने के लिए दशलक्षण धर्म की सदा पूजा करता हूँ ।

ओं हीं उत्तम क्षमा आदि दश लक्षण धर्म को जन्म जरा मृत्यु के नाश करने को जल समर्पित करता हूँ ।

चन्द केशर गार, होय सुवास दशों दिशा ।
भव आताप निवार, दस लच्छन पूजौं सदा ॥2॥

ओं हीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षणधर्माय चन्दनं निर्व० स्वाहा ।

भावार्थ—दशों दिशाओं को सुगंधित करने वाले चन्दन और केशर को घिसकर संसार की ताप को नष्ट करने के लिए दश लक्षण धर्म की पूजा करता हूँ ।

ओं हीं उत्तमक्षमा आदि दशलक्षण धर्म को संसार ताप के नाश करने के लिए चंदन समर्पित करता हूँ ।

अमल अखंडित सार, तंदुल चन्द्र समान शुभ ।
भव-आताप निवार, दस लच्छन पूजौं सदा ॥3॥

ओं हीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षणधर्माय अक्षतं निर्व० स्वाहा ।

भावार्थ—मलरहित, अखण्ड, (जो टूटे हुए न हो) उत्कृष्ट चन्द्रमा के समान श्वेत उज्ज्वल चावलों से भव की ताप को नष्ट करने के लिए दशलक्षण धर्म की हमेशा पूजा करता हूँ ।

ओं हीं उत्तम क्षमा आदि दशलक्षण धर्म को अक्षय पद की प्राप्ति करने के लिए अक्षत समर्पित करता हूँ ।

फूल अनेक प्रकार, महकें ऊरध-लोकलों ।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा ॥4॥

ओं हीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षणधर्माय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

भावार्थ—अनेक प्रकार के पुष्पों से जिनकी सुगंधि ऊर्ध्व लोक तक फैल रही है । भव की ताप को नष्ट करने के लिए 'दश लक्षण' धर्म की पूजा करता हूँ ।

ओं हीं उत्तमक्षमा आदि दशलक्षण धर्म को कामदाह के नाश करने के लिए पुष्प समर्पित करता हूँ ।

नेवज विविध निहार, उत्तम षट-रस-संजुगत ।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा ॥5॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षणधर्माय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

भावार्थ—अनेक प्रकार के उत्कृष्ट छहों रसों से युक्त नैवेद्य से भव की ताप को नष्ट करने के लिए दशलक्षण धर्म की पूजा करता हूँ ।

ओं ह्रीं उत्तमक्षमा आदि दशलक्षण धर्म को भूख की वेदना को नष्ट करने के लिए नैवेद्य समर्पित करता हूँ ।

बाति कपूर सुधार, दीपक-ज्योति सुहावनी ।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा ॥6॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षणधर्माय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

भावार्थ—कपूर की बत्ती बनाकर सुन्दर लगने वाले दीपक को धारण कर भव की ताप को नष्ट करने के लिए दशलक्षण धर्म की पूजा करता हूँ ।

ओं ह्रीं उत्तमक्षमा आदि दशलक्षण धर्म को मोह अंधकार को नष्ट करने के लिए दीप समर्पित करता हूँ ।

अगर धूप विस्तार, फैले सर्व सुगंधता ।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा ॥7॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षणधर्माय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

भावार्थ—अगर आदि से धूप को तैयार कर उसकी सुगंधि को सर्व दिशाओं में फैलाकर भव की ताप को नष्ट करने के लिए दशलक्षण धर्म की पूजा करता हूँ ।

ओं ह्रीं उत्तमक्षमा आदि दशलक्षण धर्म को आठ कर्मों के नष्ट करने के लिए धूप समर्पित करता हूँ ।

फलकी जाति अपार, घ्राण-नयन-मन-मोहने ।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा ॥8॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षणधर्माय फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

भावार्थ—अनेक प्रकार के नासिका को, नेत्रों को और मन को मोहित करने वाले आर्थात् अच्छे लगने वाले फलों से भव की ताप नष्ट करने के लिए दशलक्षण धर्म की पूजा करता हूँ ।